E- ISSN No: 2395-0269
International Journal of Applied and Universal Research
Volume 2, Issue 1, Jan-Feb. 2015 Available online at: www.ijaur.com

"विभिन्न सम्प्रदायों में वैषम्य का निराकरण"

डॉ. जयवीर सिंह तैंनगुरिया
अद्वैत वेदान्त दर्शन विभाग
अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –भारत का वेदान्त दर्शन संसार के समस्त अद्वैतवादों का शिरोमणि है। विभिन्न सम्प्रदायों में वैषम्य निराकरण के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय अद्वैत वेदान्त भारतीय दर्शन के शिखर पर स्थित हैं। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवत्गीता जिसे दर्शन की प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। वेदान्त के शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, भास्कराचार्य, वल्लभाचार्य दार्शनिक आचार्यों ने तीनों पर भाष्य लिखकर अपने मतों का समर्थन किया है। इनके दार्शनिक सिद्धान्तों को क्रमशः अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, भेदाभेदवाद, तथा शुद्धाद्वैतवाद के नाम से अभिहित किया गया है। इनमें शंकराचार्य ने उपनिषद ब्रह्मसूत्र और भगवत्गीता (प्रस्थानत्रयी) की दार्शनिक व्याख्या किया है जबकि अन्य आचार्यों की व्याख्याएँ धर्म मूलक हैं।

मुख्य शब्द – विभिन्न सम्प्रदाय, वैषम्य निराकरण एवं दार्शनिक सिद्धान्त।

1. प्रस्तावना –

विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य मानव समाज को धर्म का पथ प्रदर्शन के लिए अवतरित हुए थे। वे सभी वेदान्त दर्शन के कट्टर सनातन धर्म के उत्साही रक्षक और धर्म सुधारक थे। उनमें परस्पर विरोधी गुणों का अद्भुत सामंजस्य था। उन समग्र दार्शनिक आचार्यों की कृतियों एवं विचारणाओं को आत्मसात करने से ज्ञात होता है कि ज्ञानी, पण्डित, विचारक, वैरागी, साधु, सन्त, सन्यासी और धर्म सुधारक रहे हैं। शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म की एकमात्र सत्ता की स्वीकृति है। यहाँ ब्रह्म की धारणा सीधे उपनिषदों से ली गयी है। अद्वैतवाद की तत्त्वमीमांसा में ब्रह्म ही एक मात्र सत् है, जगत् मिथ्या है और जीव भी परमार्थतः ब्रह्म है, ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

अतएव अद्वैत वेदान्त का ब्रह्म तर्क मूलक विचार से परे है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य की दृष्टि में ब्रह्म मात्र सगुण है। रामानुजाचार्य ब्रह्म को निर्गुण नहीं मानते। रामानुजाचार्य के भेद में स्वगत भेद की बात सिद्ध की गयी है। वे ब्रह्म को व्यक्तित्त्व युक्त मानते हैं। शंकराचार्य ब्रह्म और ईश्वर में भेद करते हैं किन्तु रामानुजाचार्य ब्रह्म को ईश्वर ही मानते हैं। वैषम्य निराकरण की दृष्टि से उक्त उभय आचार्य ब्रह्म को सच्चिदानन्द मानते हैं। यहाँ शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के विचार में साम्य की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

शंकराचार्य जगत को मिथ्या मानते हैं किन्तु रामानुजाचार्य ईश्वर (ब्रह्म) के साथ जीव और जगत को भी नित्य मानते हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार शरीर और इन्द्रियों के साथ आत्मा का तादात्म्य नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर विकारवान और इन्द्रियाँ विकल हैं। यदि शरीर और इन्द्रियों को आत्मा स्वीकार करें तो आत्मा को शरीर और इन्द्रियों के दोष से दूषित होना पड़ेगा। मन भी आत्मा नहीं है, क्योंकि वह भी विकारवान है। आत्मा को क्षणिक विज्ञानों का प्रवाहमात्र मानने पर आत्मा की इकाई खण्डित होती है, परिणामतः स्मृति तथा प्रत्यभिज्ञा की व्याख्या नहीं हो पाती। आत्मा को 'शून्य' कहना भी असंगत है, क्योंकि यदि सम्पूर्ण जगत् को शून्य कहें तो भी शून्यता अपने बोध को ग्रहण करने वाली की प्राक्कल्पना कर लेती है। अर्थात् आत्मा की सत्ता निषेध से परे है। शंकराचार्य के अनुसार आत्मा एवं चेतना में द्रव्य–गुंण सम्बन्ध भी सम्भव नहीं है, क्योंकि यह भेद–दृष्टि पर आधारित है। शंकराचार्य की मान्यता है कि माया या अविधा ही वह कारण है जो ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता के स्थान पर जगत्–प्रपंच और जीवों की विविधता को उत्पन्न करती है। जैसे, जगत् की प्रतीति माया के कारण है वैसे जीव का वैशिष्ट्य, जीव की ब्रह्म से पृथक अपने व्यक्तित्त्व की अनुभूति माया या अविधा जनित है।

2. विश्लेषण

शंकराचार्य के अनुसार जीव इस अविधा के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर अपने ऊपर अनात्म पदार्थों और उनके धर्मों को आरोपित करता है। अर्थात् वह पुत्र, स्त्री, मित्र, शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण और इनके धर्मों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह अपने को कर्ता एवं भोक्ता, जो वह वास्तव में नहीं है, समझ लेता है तथा नानाविध दुःखों का भोग करता है। यह अनादि, नैसर्गिक मिथ्याज्ञानरूप अध्यास सभी अनर्थों की जड़ है।

अद्वैत वेदान्त के तत्त्वमीमांसीय ढाँचे में ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता स्वीकृत है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही सत् है। जगत् की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार करते हुए भी पारमार्थिक दृष्टिकोण से उसकी सत्ता का निषेध किया जाता है। जीव भी परमार्थताः ब्रह्मः ही माना जाता है। ब्रह्म से पृथक् जीव की कोई सत्ता नहीं है। उसकी पृथक् सत्ता अविधाकृत है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग में समन्वय करते हुए रामानुजाचार्य कहते हैं कि भक्ति–रूप ज्ञान–विशेष की उत्पत्ति पर, ईश्वराराधन से प्राप्त ज्ञान से युक्त होकर कर्म या निष्काम कर्म करने से भक्तियोग की सिद्धि हो जाती है।[1] मोक्ष–साधन–विद्या या ज्ञान भी कर्म (नित्य नैमित्तिक) की अपेक्षा

E- ISSN No: 2395-0269
International Journal of Applied and Universal Research
Volume 2, Issue 1, Jan-Feb. 2015 Available online at: www.ijaur.com

करता है और यज्ञ आदि ज्ञानोत्पत्ति में सहायक है। अतः ज्ञान–कर्म–समुच्चय रामानुजाचार्य की अभीष्ट प्रतीत होता है, हालाँकि कहीं–कहीं ज्ञान को ही सर्वोच्च साधन के रूप में माना गया है। वैसे, वैरागी और गृहस्थों के लिए साधन में कुछ अन्तर होते हैं। [2]

मोक्ष की अवस्था में धर्मभूत ज्ञान पूर्ण विकसित होता है। यह ज्ञान का विषय ईश्वर का दिव्य विग्रह होता है। मुक्त जीवात्मा सर्वदा ईश्वर का प्रत्यक्ष करता रहता है। इसलिए आत्म–साक्षात्कार नहीं बल्कि ईश्वर–साक्षात्कार ही मोक्ष की स्थिति है। आत्मज्ञान कैवल्य की स्थिति है। इसमें जीवात्मा अपने को प्रकृति से भिन्न रूप में जान लेता है। प्रकृति के विकारों से आत्मा की मुक्ति हो जाने के बावजूद भी जीवात्मा तब तक पूर्ण मुक्त नहीं हो पाता जब तक ईश्वर–साक्षात्कार नहीं हो जाता – यदुक्तमविद्यानिवृत्तिरेव मोक्षः सा च ब्रह्मविज्ञानादेव भवति इति, तदभ्युप–गम्यते।[3] अतः ईश्वर साक्षात्कार यौगिक या प्राकृतिक प्रत्यक्ष नहीं है। इसके लिए जीवात्मा को ज्ञानी या केवली होना आवश्यक है। अभिप्राय यह कि मोक्षावस्था पूर्ण ज्ञान की अवस्था है।

भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदाय जन्म–मृत्यु–चक्र को बन्धन और इसकी आत्यंतिक समाप्ति को मोक्ष नाम देते हैं। जन्म और मृत्यु के बाद पुनर्जन्म, स्वभाव से सुख–दुःख से स्वतंत्र आत्मा के लिए बन्धन ही है। जन्म–मृत्यु, 'मैं', मेरा, 'तेरा' इत्यादि की अनिवार्यता अज्ञान के कारण ही है। तत्त्व–ज्ञानी या तत्त्वाभ्यासी जीवात्मा अपने स्वरूप को प्राप्त कर इस भव–चक्र से सर्वदा के लिए छुटकारा प्राप्त कर लेता है। आत्मा का आत्म–स्वरूप–बोध ही उनका मोक्ष है।

वेदान्त के अनुसार यद्यपि ईश्वर को ब्रह्म के औपाधिक रूप में स्वीकार किया गया है; फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्म से ईश्वर का दर्जा कुछ कम है। परब्रह्म जब बीजरूप अनादि शक्ति से युक्त होकर जगत् की उत्पत्ति के लिए तटस्थ लक्षण धारण करता है तब वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। ब्रह्म के इन दो रूपों का वर्णन उपनिषदों में भी वर्णित है। उपनिषदों का परब्रह्म ही निर्गुण ब्रह्म और अपरब्रह्म ही सगुण ईश्वर है। तात्विक दृष्टि से जीव और ईश्वर एक हैं। बुद्धि के ऊपर पड़ा हुआ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव कहलाता है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने के कारण जीवात्मा, ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

अन्यदर्शनों का आत्म विषयक मन्तव्य का वैषम्य निरूपित करते हुए मैं कहना संगत मानता हूँ कि अहं बुद्धि का विषय आत्मा है। 'मैं मनुष्य हूँ', 'मैं स्थूल हूँ' आदि में मनुष्यत्व आदि धर्मविशिष्ट, स्थूल देह की 'अहं' प्रतीति का विषय है। अतः देह ही आत्मा है। संसार में मनुष्य को स्त्री, धन आदि विषय प्रिय हैं क्योंकि वे इस देह के उपकारक हैं। अतएव यह देह ही परम प्रीति का विषय होने से आत्मा है। इसी प्रसंग में अद्वैत वेदान्त के सभी सम्प्रदाय मृत्यु को ही मोक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है।

आत्मा को क्षणिक मानना असंगत है। जैसे चक्षु आदि स्वरूप ज्ञान के साधन हैं वैसे ही बुद्धि भी निश्चयरूप ज्ञान का साधन है। अतः बुद्धि, आत्मा नहीं हो सकती है। बुद्धि का कार्य पदार्थों का निश्चय करना है। उसको जानने वाला आत्मा उससे अलग है। आत्मा प्रकाशस्वरूप है। अतः सदा प्रकाशित रहता है।

'यह जगत् आगे असत् था' यह श्रुतिवाक्य शून्य का प्रतिपादक नहीं है, बल्कि यह उन दर्शन–सिद्धान्तों का निषेध करता है, जिनके अनुसार प्रागभाव आदि को जगत् का कारण माना गया है।

अद्वैत वेदान्त नास्तिक दर्शनों का खण्डन करते हुए अपने सिद्धान्त (आस्तिक) को इस प्रकार व्यक्त किया है कि जिन उपनिषदों और श्रुतियों के आधार पर आत्मा को अणुपरिमाणी सिद्ध किया गया है, वस्तुतः उनकाक तात्पर्य यह है कि स्थूलबुद्धि पुरुष के लिए वह अणु की भाँति दुर्ज्ञेय है। श्रुतियों का उद्देश्य तो आत्मा की व्यापकता का प्रतिपादन करना है।

वेदान्तियों के मत से जितनी भी सावयव वस्तुएँ हैं वे घट की तरह नाशवान् हैं। यदि आत्माको सावयव माना जायगा तो आत्मा की नाशवत्ता सिद्ध होती है, और इस प्रकार 'कृतनाश' तथा 'अकृताभ्यागम' दोषों का उपशमन न हो सकेगा। अर्जित पाप–पुण्यों का उपभोग किये बिना ही नष्ट हो जाना 'कृतनाश' और न किये गये पाप–पुण्यों का उपभोग 'अकृताभ्यागम' कहलाता है। इसलिए आत्मा न तो अणु है और न मध्यम ही। वह महत्परिणाम वाला (महान्) अथवा विभु है। वह आकाश की भाँति सर्वत्रगामी और निरवयव है।

'वेदान्तसार' में डॉ. रमाशंकर, डॉ. रमाकान्त तथा सदानन्द ने समवेत रूप से सगुण ईश्वर की विभूतियों के सम्बन्ध में कहा है कि 'यह ईश्वर स्थावर, जंगम आदि समस्त प्रपंचों का साक्षी होने के कारण और समस्त अज्ञानों को प्रकाशित करने के कारण 'सर्वज्ञ' है; सभी जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल देने के कारण 'सर्वेश्वर' है; सभी जीवों को उनके कर्मों में प्रवृत्त करने के कारण 'सर्वनियन्ता' है; प्रमाणों के द्वारा वह नहीं जाना जा सकता है; अतः अप्रमेय है; सभी जीवों के घट में निवास कर उन्हें नियंत्रित करने के कारण 'अंतर्यामी' है और समस्त चराचर विश्व का विवर्तरूप में अधिष्ठान होने के कारण जगत् का कारण भी है।'

अद्वैत वेदान्तियों की दृष्टि में धर्म जीवन का सारत्व है। भारतीय चिन्तन धारा के साथ धर्म की धारा भी बहती रही। ये परिवर्तन असामान्य एवं क्रान्तिकारी होते हुए भी चिन्तन और क्रिया को कहीं एकसूत्रता या पूरकता से जोड़े रहे। वैदिक दर्शन के पश्चात् बौद्ध दर्शन या साथ ही साथ चलने वाले जैन व चार्वाक दर्शन परस्पर विरोधी होते हुए भी एक–दूसरे के पूरक हैं। नैगमिक और आगम दर्शन भी यहाँ बाँहों में बाँह डालकर चले हैं।

भारतीय दर्शन, जितने वैज्ञानिक हैं, उतने ही वे वैज्ञानिक पद्धतियों पर भी आधारित हैं। प्रत्येक दर्शन अपनी सिद्धि के लिए वैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्धारण करता है। प्रमाण, प्रमा और प्रमेय के बिना दर्शन एक पग आगे नहीं चलता। उसने अपनी एक

E- ISSN No: 2395-0269
International Journal of Applied and Universal Research
Volume 2, Issue 1, Jan-Feb. 2015 Available online at: www.ijaur.com

तर्क–पद्धति निर्मित की है, जो सूक्ष्म है और सूक्ष्म चिन्तन में ही उसका प्रतिफलन भी होता है।

डॉ. राधाकृष्ण ने विभिन्न वेदान्त सम्प्रदायों में परमतत्त्व और जगत् की मान्यताओं में वैषम्य का निराकरण करते हुए लिखा है कि धर्म अपने सार रूप में परम सत्ता का अनुभव या सजीव सम्पर्क है।.... धर्म में आत्मा पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाती है और उसका जीवन हमारी सत्ता के प्रत्येक पक्ष को सन्तुष्ट करता है।''[4]

राधाकृष्णन, एस. द्वारा सम्पादित अग्रश्च वे लिखते हैं कि ब्रह्म कालातीत है। काल की उत्पत्ति सृष्टि के साथ होती है। क्रमिक घटनाओं के अनुभव से ही काल की संकल्पना होती है, परन्तु घटनाओं और उनसे बना संसार सीमित एवं विनाशधर्मी है, इसलिए काल का आदि और अन्त होता है। जगत् की उत्पत्ति, विकास एवं इतिहास सत्य है, प्रतीति नहीं। काल भी ईश्वर के लिये इस अर्थ में सत्य है कि ईश्वर अपनी योजनाओं को काल में ही क्रियान्वित करता है। यदि काल सान्त नहीं होता तो हमें संसार को भी शाश्वत मानना पड़ता, जिसके परिणामस्वरूप संसार नहीं होता तो हमें संसार को भी शाश्वत मानना पड़ता, जिसके परिणामस्वरूप संसार एवं ईश्वर में द्वैत उत्पन्न हो जाता। संसार एवं काल का अन्त सम्भव मान लेने से नैतिक विकास की प्रक्रिया सार्थक हो उठती है – ''संसार का आदर्श एक नित्य टलनेवाली पूर्णता नहीं है परन्तु एक दिन, जिसकी तिथि निश्चित नहीं, उस आदर्श की प्राप्ति होगी।''[5]

रामानुजाचार्य शंकराचार्य के माया या अविद्या–विचार पर घोर आपत्ति करते हैं। शंकराचार्य ने माया–सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता एवं जगत्–जीव प्रपंच के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी मान्यता है कि माया के कारण ही निर्गुण एवं भेद रहित ब्रह्म जीव–जगत् प्रपंच के रूप में आभासित होता है। रामानुजाचार्य शंकराचार्य के माया–सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। रामानुजाचार्य शंकराचार्य के विपरीत माया (प्रकृति) को ब्रह्म की वास्तविक शक्ति मानते हैं जिसके द्वारा वह सृष्टि–रचना करता है।[6]

निराकरण की दृष्टि से साधन करने से साधक को परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। निर्गुण–निराकार रूप सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा को अभेद रूप से प्राप्त कर लेना ही परमात्मा का साक्षात्कार करना है। यथा–

''योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।''[7]

अद्वैत वेदान्त दर्शन के सभी सम्प्रदायों में सत्, चित्, आनन्द – इन तीन नामों से जो ब्रह्म के लक्षण बतलाये हैं–ये तीनों धर्म हों और ब्रह्म धर्मी हों, ऐसा नहीं है, क्योंकि धर्म जड़ होता है। अथवा ब्रह्म गुणी हो और ये उसके गुण हों, ऐसी भी बात नहीं है; क्योंकि ब्रह्म गुणातीत है। ये तीनों एक प्रकार से ब्रह्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं; किन्तु वास्तव में तो ये ब्रह्म के नाम अर्थात् पर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि जो सत् है, वही चेतन है और जो चेतन है, वही सत् है तथा जो सत् है, वही आनन्द है और जो आनन्द है वही सत् है एवं जो चेतन है, वही आनन्द है और जो आनन्द है, वही चेतन है।

वास्तव में उसे 'सत्' इसलिये कहा है कि वह वस्तुतः विद्यमान है, कहीं कोई उसका अभाव न मान ले। इसके लिए महापुरुषों का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो विज्ञान–आनन्दघन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, उस महात्मा के अन्तःकरण में अन्तःकरण सहित सारे संसार का अत्यन्त अभाव होते हुए भी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का भाव रहता है। उसे 'चेतन' इसलिये कहा गया है कि वह सत्स्वरूप परमात्मा किसी का विषय नहीं है; क्योंकि उसमें जड़त्व का अत्यन्त अभाव है और वह स्वंय ही अपने–आपको जानने वाला है। तथा उसमें दुःखों का अत्यन्त अभाव है, वह परम शान्ति और परम सुखमय है, इसलिये उसे 'आनन्द' नाम से कहा गया है।

इसी को गीता में 'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्' कहा है। कठोपनिषद् में भी कहा है –

''एव सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धच्चा सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।''[8]

'सम्पूर्ण भूतों के हृदय में छिपा हुआ वह आत्मा सबको प्रतीत नहीं होता, परन्तु यह सूक्ष्मबुद्धि वाले महात्मा पुरुषों से तीक्ष्ण और सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ही देखा जाता है।

किसी भी प्रकार से जो सच्चिदानन्द परमात्मा का स्वरूप समझ में आता है, उससे परमात्मा का निर्विशेष स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है। उस सच्चिदानन्दघन के यथार्थ ज्ञान से जो प्राप्त होता है वह उस परमात्मा का निर्विशेष अनिर्वचनीय स्वरूप है, उसी को निर्वाण ब्रह्म और परब्रह्म भी कहते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा की अव्यक्तता नित्य और सनातन है, शेष सब नाशवान्, एकदेशीय और परप्रकाश्य होने से अनित्य एवं जड़ है। उपर्युक्त विवेचन से जो परमात्मा की अव्यक्तता समझ में आती है, उससे भी वास्तव में परमात्मा की अव्यक्तता अत्यन्त विलक्षण है, जो कि परमात्मा की प्राप्ति होने से ही समझ में आ सकती है। यथा –

''ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यतेः।।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।''[9]

इस प्रकार अद्वैत वेदान्त में यह सिद्ध हो जाता है कि प्राणियों में जो कुछ भी बल, बुद्धि, तेज एवं विभूति है, सब परमेश्वर से ही है। गीता में भी श्रीभगवान् ने कहा है –

''यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्।।''[10]

E- ISSN No: 2395-0269

International Journal of Applied and Universal Research
Volume 2, Issue 1, Jan-Feb. 2015 Available online at: www.ijaur.com

Journal OF APPLIED AND UNIVERSAL RESEARCH

'जो–जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस–उसको ते मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान।'

इस प्रकार उपनिषदों में कहीं साकाररूप से और कहीं निराकाररूप से, कहीं सगुणरूप से और कहीं निर्गुणरूप से भेद–उपासना का वर्णन आता है। वहाँ यह भी बतलाया गया है कि उपासक अपने उपास्य देव की जिस भाव से उपासना करता है, उसके उद्देश्य के अनुसार ही उसकी कार्य–सिद्धि हो जाती है। कठोपनिषद् में सगुण–निर्गुण रूप ओंकार की उपासना का भेदरूप से वर्णन करते हुए यमराज नचिकेता के प्रति कहते हैं –

''एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।''[11]

'यह अक्षर ही तो ब्रह्म है और अक्षर ही परब्रह्म है; इसी अक्षर को जानकर जो जिसको चाहता है, उसको वही मिल जाता है। यही उत्तम आलम्बन है, यही सबका अन्तिम आश्रय है। इस आलम्बन को भलीभाँति जानकर साधक ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।'

इसलिये कल्याणकामी मनुष्यों को इस दुःखरूप संसार सागर से सदा के लिये पार होकर परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ही उनकी उपासना करनी चाहिए, सांसारिक पदार्थों के लिये नहीं। वे परमेश्वर इस शरीर के अन्दर सबके हृदय में निराकार रूप से सदा–सर्वदा विराजमान हैं, परन्तु उनको न जानने के कारण ही लोग दुःखित हो रहे हैं। जो उन परमेश्वर की उपासना करता है, वह उन्हें जान लेता है और इसलिये सम्पूर्ण दुःखों और शोकसमूहों से निवृत्त होकर परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। मुण्डकोपनिषद् में भी बतलाया है –

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य–नक्षत्रन्यो अभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो–ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश–मस्य महिमानमिति वीतशेकः।।
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।।''[12]

'एक साथ रहने वाले तथा परस्पर सखाभाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनों में से एक तो उस वृक्ष के कर्मरूप फलों का स्वाद ले–लेकर उपभोग करता है; किन्तु दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है। इस शरीर रूपी समान वृक्ष पर रहने वाला जीवात्मा शरीर की गहरी आसक्ति में डूबा रहता है और असमर्थतारूप दीनता का अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता रहता है, किन्तु जब कभी भगवान् की अहैतुकी दया से भक्तों द्वारा नित्यसेवित तथा अपने से भिन्न परमेश्वर को और उनकी महिमा को यह प्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोकरहित हो जाता है तथा जब यह द्रष्टा (जीवात्मा) सबके शासक, ब्रह्मा के भी आदिकारण, सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, दिव्यप्रकाशस्वरूप परमपुरुष को प्रत्यक्ष कर लेता है उस समय पुण्य–पाप–दोनों से रहित होकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी भक्त सर्वोत्तम समता को प्राप्त कर लेता है।'

अर्थात् पहले यह ब्रह्म ही था, उसने अपने को ही अनुभव किया कि 'मैं ब्रह्म हूँ।' अतः वह सर्व हो गया। उसे देवों में से जिस–जिसने जाना वही तद्रूप हो गया। इसी प्रकार ऋषियों और मनुष्यों में से भी जिसने उसे जाना, वही तद्रूप हो गया।

3. निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन होगा कि विभिन्न वेदान्त सम्प्रदायों ने वेदान्त की पुस्तकों पर टीकाएँ या भाष्य लिखने पड़े हैं। इन पुस्तकों में तीन महत्वपूर्ण पुस्तक शामिल हैं उपनिषद्, भगवद गीता और ब्रह्मसूत्र तदनुसार आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य तीनों ने इन तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों पर विशिष्ट रचनायें दी हैं।

सभी उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप का विवेचन करना है। आत्मा एवं ब्रह्म उन दो स्तम्भों के समान है जिन पर उपनिषदों की सम्पूर्ण विचारधारा आश्रित है। इन दोनों सत्ताओं में क्या सम्बन्ध है? इस विषय में उपनिषदों में परस्पर विरोधी स्थल, परिणामस्वरूप उपनिषदों के भाष्यकारों में परस्पर विरोधी दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं। यदि मध्वाचार्य सदृश कुछ भाष्यकार आत्मा को ब्रह्म से एकान्त भिन्न मानते हैं और रामानुजाचार्य तथा उनके समर्थक दोनों में विशिष्ट प्रकार का अभेद स्वीकार करते हैं तो शंकराचार्य सदृश भाष्यकार आत्मा एवं ब्रह्म को नितान्त अभिन्न मानते हैं। ये क्रमशः द्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत–तीन प्रधान तात्विक सम्प्रदायों की स्थितियाँ हैं। निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य एवं चैतन्याचार्य के दार्शनिक विचारों में दोनों के सम्बन्ध के विषय में भिन्न अवधारणाएँ प्राप्त होती हैं। किन्तु हमारी तर्कबुद्धि ब्रह्म एवं आत्मा के विषय में अद्वैतवादी (अभेद) विचारों का ही समर्थन करती है।

संदर्भ –

1 वेदार्थसंग्रह, पृष्ठ 44, रामानुज.
2 श्रीभाष्य, 3/4/26, रामानुज.
3 श्रीभाष्य, 1/1/1, रामानुज.
4 कन्टेम्पोरेरी इण्डियन फिलासफी, पृष्ठ 486, राधाकृष्णन, एस. द्वारा सम्पादित.
5 कन्टेम्पोरेरी इण्डियन फिलासफी, पृष्ठ 500, राधाकृष्णन, एस. द्वारा सम्पादित.
6 श्रीभाष्य, 1/4/91, रामानुज.
7 गीता–5/24.
8 गीता – 1/3/12.

E- ISSN No: 2395-0269

International Journal of Applied and Universal Research
Volume 2, Issue 1, Jan-Feb. 2015 Available online at: www.ijaur.com

9 बृहदारण्यक उपनिषद् – 5/1/1.
10 गीता – 10/41.
11 कठोपनिषद – 1/2/16–17.
12 मुण्डकोपनिषद – 3/1/1–3.